## निराला और तुलसीदास

### गोस्वामी तुलसीदास और महाकवि निराला

छायावादी रचनाकार सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की कविता यात्रा उन्नीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में आरम्भ होती है। प्रेम, सौन्दर्य व श्रृंगारिकता से आरम्भ हुई यह यात्रा दो दशक बाद राम की शक्तिपूजा तुलसीदास तथा सरोज स्मृति जैसी प्रबंधात्मक कविताओं के सृजन के साथ वयस्क हो जाती है। आज जब तुलसीदास और उनके कृतित्व को लेकर विविध संदर्भो में व्याख्याये हो रही हैं तब यह आवश्यक है कि उनके सिद्धान्त लोकमंगल की साधनावस्था तथा सिद्धावस्था पर दृष्टि डालते हुए छायावाद युग के एक ऐसे कवि और उसकी कविता की चर्चा करें जिसने तुलसी और उनके कृतित्व को नवीन आयाम प्रदान किये है। निराला की प्रसिद्ध कविता तुलसीदास 1936 में लिखी गई थी उस समय तक उसमें चित्रित किये गए संदर्भो को पलायनवादी काव्य की स्थापना के विरूद्ध समझा गया था समझा जा रहा है। डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं कि चरित्र नायक (तुलसीदास) के संदर्भ में रचना का तात्कालिक परिवेश मुगलकाल है, पर प्रकारान्तर से कविता आधुनिक भारत में अंग्रेजो की दासता का विरोध प्रक्षिप्त करती है। यहां तुलसी की भूमिका में जैसे निराला स्वयं अपने को परिकल्पित कर रहे हों। यहां कवि दिखाता है कि राजनैतिक पराधीनता तो अपने में कष्टदायक है ही पर उससे अधिक गहरे तल पर खोखला करने वाली सांस्कृतिक दासता है।

(हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास– डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी संस्करण–2004, प्र0–127)

इससे आगे हम यह भी जोड़ना चाहते है कि तुलसी के समय के 350 वर्ष बाद जो संवेदना निराला में जागृत हुई वह अब लगभग सात दशक बाद किसी रूप में समस्या और चुनौती बनकर उपस्थित है। सांस्कृतिक दासता का एक कारूणिक चित्र निराला खींचा है।

भूला दुःख, अब सुख –स्वरित जाल।

फैला–यह केवल–कल्प काल।

कामिनी–कुमुद–कर–कलित ताल पर चलता।

प्राणों की छवि मृदु मंद स्पंद, लघु–गति।

नियमित–पद, ललित–छंद।

होगा कोई, जो निरानंद, कर मलता।

हिन्दू संस्कृति का सूर्य डूब जाने के बाद चारों तरफ अकबर के समय की प्रभावकारी स्थिति विद्यमान है जिसमें जनसामान्य ने अपना दुःख भुला दिया है किन्तु तुलसी को सांस्कृतिक दासता कष्टकर लगती है क्योंकि जिस देश पर अकबर का साम्राज्य फैला हुआ है उस साम्राज्य को प्राप्त करने के लिए उसके पितामाह ने भारत के सिंधु राजाओं पर आकमण किया था। एक आकमणकारी का वंशज जनता को चाहे जितना सुख दे किन्तु जन मन मंगलकारी रामकथा लिखने वाले तुलसी के लिए यह दशा केवल कष्टकर ही नहीं अपितु अन्तर्द्वन्द्व का कारण बनती है। इसी कविता में उन्होने रत्नावली को शारदा रूप में उपस्थित किया है–

देखा शारदा नील–वसना, हैं सम्मुख स्वयं सृष्टि–रसना। वीणा वह स्वयं सुवादित स्वरं/फूटीं तर अमृताक्षर–निर्झर।

जिस देशकाल की परिस्थितियों के शर से बंधे जाने के बाद वह महाकवि जगा, उसके जागरण में छिपे हुए नवजागरण और लोक मंगल को प्रथमतः मैथिलीशरण गुप्त साकेत और पंचवटी में पहचान रहे थे उसे ही निराला ने पहचान कर अपने देशकाल और परिस्थितियों के अनुरूप प्रस्तुत किया शक्ति पूजा की दुर्गा राम के वदन में लीन होती है और तुलसीदास की शारदा रत्नावली में प्रकट होती है और वहॉ भी लीन होती है जिसके आलोक में तुलसी जैसा रचनाकार अपने मानस ही रचना करता है। तुलसी की रचना रामचरितमानस और विनयपत्रिका का जैसे भाषिक और भावात्मक स्तर भिन्न है उसी प्रकार निराला की रचना तुलसीदास और राम की शक्तिपूजा का रचनात्मक धरातल–भिन्न हो जाता है। कभी कमी तो सहसा यह विश्वास नहीं होता कि इस रचनाकार ने जूही की कली में ऐसा श्रृंगारिक वर्णन करने के उपरांन्त आधुनिक काल के तीसरे चरण में ऐसी सशक्त रचना कैसे कर डाली–

भारतीय इधर हैं, उधर सकल जगजीवन के संचित कौशल।

तुलसी का नाम आते ही हमारा ध्यान भक्तिकाल के वैविध्ययुक्त स्वर्णकाल पर जाता है जहां कबीर, सूर तुलसी और जायसी जैसे कवि एक साथ रहस्य, प्रेम की दिवानगी तथा विरक्ति से प्रेति होकर संन्यासी बनने पर भी जब अपने राम से सीता का स्मरण कराते हैं तो पहले उनका ध्यान जनकपुर के उस मंडप पर जाता है जहां– दूल्ह श्री रघुबीर बनें दुल्ही सिय सुन्दर मंदिर माही। गावत, गीत सबै मिलि सुन्दरि।

वदे युवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं। राम को रूप निहारति जानकी। कंगन के नग की परछाहीं। याते सबै सुधि भूलि गईं कर टेकि रहीं पल टारत नाहीं।

विद्यमान हैं। शक्तिपूजा के राम का ध्यान भी निराशा के क्षण में अपनी जानकी के उस रूप पर जाता है। जिसका अवलोकल उन्होंने पुष्पवाटिका में किया था–

कॉपते हुए किसलय। झरते पराग–समुदाय–

गाते खग–नभ–जीवन–परिचय–तरू मलय–वलय–

ज्योतिः प्रपात स्वर्गिय, ज्ञात छवि प्रथम स्वीय–

जानकी–नयन–कमनीय, प्रथम कंपन तुरीय

'निराला रचनावली'

इस सौन्दर्य के लिए निराला जिस प्रकार सीता के सम्पूर्ण प्रणयालोक को राम पर चित्रित करते हैं वैसा ही प्रतिबिम्ब सीता पर भी दिखाई पड़ता है–

'अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा।

सिय मुख ससि भए चंद्र चकोरा।

भये विलोचन चारू अचंचल

मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल।

तुलसी और निराला के सांस्कृतिक दृष्टिकोण में यही अंतर है कि तुलसी की सीता कंगन के लग की परछाहीं में राम की सुन्दरता देखकर मोहत होती है और निराला के राम अपनी हार के विषाद पूर्ण क्षण में प्रियतमा का स्मरण करके शक्तिपूजा के बहाने अपने मानस में शक्ति का अर्जन दोनों रचनाकारों

की समस्या और चुनौती हैं। एक के छुटकारे का लक्ष्य है– मुगल शासकों से भारतीय अस्मिता की रक्षा और दूसरे का लक्ष्य है– अंग्रेजो की दासता से भारती को मुक्त कराना।

निराला के राम और सीता तथा तुलसी के राम और सीता में एक पूर्वापर संबंध अवश्य है क्योंकि तुलसी अपने मानस में जिस आदर्श चरित्र की परिकल्पना करते हैं वह चरित्र आदर्श भाई, आदर्श पुत्र, आदर्श माता, आदर्श पिता तथा बंधु–बान्धवों के आदर्श से समायोजित है, जिसका मूलाधार ग्रहस्थ जीवन है, जबकि कृष्ण भक्ति से प्रसिद्ध कवि सूरदास की सर्जना के केन्द्र में कृष्ण का ऐसा चरित्र है जो वैवाहिक संबंधो पर नहीं, प्रेम संबंधो पर आधारित हैं। कृष्ण को पत्नी से अधिक राधा के प्रति प्रेम है जो प्रेमिका है, द्रौपदी से लगाव है जो उनकी एक मित्र है तथा नंद और यशोदा उनके वास्तविक माता–पिता न होर के उनके वात्सल्य के लिए बिलखते देखे जाते है। निराला में प्रेम तथा ग्रहस्थ जीवन के समन्वय का प्रयास एक प्रतिभा सम्पन्न रचनाकार की संवेदना का प्रतिफल है। प्रेम और सौन्दर्य वर्णन निराला की समसामयिक अनुभूति है जो छायावादी काव्य की पहचान है किन्तु छायावाद युग में रहकर भी कोई रचनाकार यदि तुलसी की मर्यादा के साथ–साथ प्रेम और सौन्दर्य की अनुभूतियों को भी कविता में स्थान देता है तो यह उसकी प्रतिभा का परिणाम है। निराला की कविता में आचार्य नंददुलारे बालपेयी ने तीन प्रमुख रचनाकारों की प्रेरणा की परख की है। उनके काव्य में यदि रवीन्द्रनाथ टैगोर की सौन्दर्य दृष्टि आम्भिक रचनाओं में है तो तुलसी जैसे महान दार्शनिक भक्त कवि का प्रभाव परवर्ती रचनाओं में है, उनके काव्य में विद्यमान ऐसे संदर्भो के आधार पर ही तुलसी की पंक्ति 'गिरा अर्थ जल बीचि सम। कहियत भिन्न अभिन्न।' के द्वारा तुलसी जिस प्रकार वाणी और अर्थ की भिन्नता समानता घोषित करते है उसी प्रकार निराला भी तुलसी के इस आदर्श के अनुरूप काव्य भाषा का समायोजन करते दिखाई पड़ते है। 'तुलसीदास' तथा 'राम की शक्तिपूजा' नामक कविताओं में निराला की तत्समयुक्त शब्दावली इसी की एक प्रकिया है। नन्ददुलारें बाजपेयी लिखते हैं कि सन् 1927,1928 में निराला के काव्य का द्वितीय चरण प्रारम्भ होता है जो 1935–1937 तक चलता है, इस अवधि में उन्होनें अधिकांशतः गीतो की रचना की। गीतिका (1936) के समस्त गीतों के अतिरिक्त, 'अनामिका' (1938) की द्वितीय आवृत्ति में गीत प्रकाशित

हुए हैं। प्रारम्भिक प्रगीत रचनाओं की तुलना में ये परवर्ती रचनाएं अधिक संयत और प्रायः छंदोबद्ध हैं।'

–(निरालाः छवि कवि' सं0 नंद किशोर नवल, में निबंध– 'निराला–काव्य विकास'– आ0 नंददुलारे बाजपेई, पृ0–28)

बाजपेयी जी का आशय यह है कि उनके विकास के प्रथम चरण में यदि स्वच्छंदतावादी चेतना प्रमुख है तो पूर्व में बंगला चेतना का प्रभाव है और दूसरे चरण में यदि वे संयत भाषा में छंद बद्ध रचना करते है तो वह तुलसी और सूर जैसे भक्त कवियों की देन है। श्रृंगार की परिष्कृत भूमिकाएं कृष्ण चरित्र की परम्परा में है तो निराला, विद्यापति, सूरदास और मीरा की परम्परा से जुड़ते हैं जबकि उनकी रचनाओं का उदान्त पक्ष उन्हें तुलसीदास से जोड़ता है। तुलसी द्वारा वर्णित रामचरित से प्रेरित होर उन्होंने रामचरितमानस का खड़ी बोली में रूपान्तरण किया था और वीरता, उत्साह व संघर्ष करने की क्षमता यदि वे राम से ग्रहण करते है तो इसके साथ ही शक्ति की उपासना करते हुए वे शक्ति काव्य के प्रणेता बन जाते है। जयशंकर प्रसाद की प्रसिद्ध कृति कामायनी की प्रेरणादायक पंक्तियां दृष्टव्य है–

'शक्ति के विघुत कण जो व्यस्त। विकल बिखरे है हों निरूपाय समन्वय उनका करे समस्त। विजयिनी मानवता हो जाय।

इसी के आसपास निराला ने तुलसीदास में शारदा नीन वसना का दर्शन किया तथा शक्तिपूजा में जामवान से राम को दीक्षा दिलवाई है–'शक्ति की करो मौलिक कल्पना' निश्चय ही यह शक्ति की मौलिक कल्पना सम्पूर्ण छायावादी काव्य को राष्ट्रीय संदर्भ से जोड़करा उसे शक्ति का काव्य बनाती है और उस शक्ति काव्य के प्रणेता निराला को ऐसे शक्ति का शोधक। पहले वे जन्मभूमि की वंदना करते हुए लिखते है–

'जन्मभूमि मेरी है जगत महारानी' और बाद में वे एक ऐसी दुर्गा की परिकल्पना करते है जिसकी उपासना सफल बनाने हेतु राम अपने नेत्र भी काटकर चढ़ा देना चाहते है।

निराला का यह वैविध्यपूर्ण स्वर छायावादी काव्य का एक ऐसा स्वर है जिसमें टैगोर की परम्परा है तो प्रसाद की औपनिषदिक् चेतना का विरोध, पंत के

पल्लव की आलोचना। वे अपने नये–नये प्रयोगां द्वारा 'कुकुरमुत्ता' वह तोड़ती पत्थर' रानी और कांनी तक को अपनी कविता में स्थान देते हैं। यदि हम उनकी काव्य सर्जना पर विहंगम दृष्टि डाले तो उसमें हमें कहीं तो इस स्त्रोत झरने की तरह कल–कल, छल–छल ध्वनि से प्रवाहित दिखाई पड़ते है तो कहीं सत् श्री अकाल की तुमुल ध्वनि सुनाई पड़ती है।

शक्तिपूजा के राम एक ऐसे ही धुनर्धर हैं जो तुलसी की परिकल्पना में एक ब्रहम हैं और कृष्ण के दर्शन करते हुये भी तुलसी राम ही देखना चाहते है।

कहा कहौं छवि आपकी भले बनें हौ नाथ

तुलसी मस्तक तब नवै, धनुष बाण लेओ हाथ